गाथा में कहा है। यह तो बहुत साल पहले की बात है। २१ वर्ष हुए। समझ में आया? २१ वर्ष पहले कहा, इस गाथा में तो व्यवहार को स्थापन किया है। लेकिन किस प्रकार स्थापन किया है? व्यवहार से आत्मा, ज्ञान-दर्शन-चारित्र का भेद करके समझाना, इतना व्यवहार है। लेकिन वह भेद आदरणीय नहीं है। सुननेवाले को भी भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद (अंगीकार) करने जैसा है। क्या हो लेकिन? वाणी का झघड़ा, सत्य को समझने की लायकात प्रगट करे नहीं तो तीर्थंकर जैसे समझाये तो कोई समझे, ऐसी ताकात है नहीं। समझ में आया?

तब उसका एक प्रश्न होता है कि '**व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता? और व्यवहारनय कैसे अंगीकार नहीं करना?**' जब कि आपने स्थापित किया, जरूरत तो स्थापित करी कि व्यवहार बिना निश्चय सच्ची वस्तु उसे समझायी नहीं जाती। इसलिये व्यवहार द्वारा समझाते हैं। समझाते हैं तो व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना? जिससे समझाया जाात है उसको अंगीकार क्यों नहीं करना? इस प्रश्न का उत्तर आचार्य देंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद-१२, सोमवार,
दि. १६-४-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १८

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, पंडित टोडरमल ने हज़ारों शास्त्रों की संधि का, खातावही करके, जैसे आदमी खातावही करता है न? ऐसे सब मेल किया है। उसमें सातवाँ अध्याय चलता है। सातवेँ अध्याय में जैन में जन्म होने के बावजूद, निश्चय और व्यवहार के कथन शास्त्र में आवे, उसका मेल करे नहीं और निश्चय की बात भी सच्ची और व्यवहार की भी सच्ची, इस प्रकार दोनों में भ्रमणा करे तो वह भी सत्य मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता। समझ में आया?

अपने यहाँ आया है, देखो! व्यवहार, आत्मा के स्वभाव का निश्चय का भान होनेपर भी बीच में व्यवहार आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? मोक्षमार्ग में बीच में वह आता है। वचमां समझते हो? बीच में। आत्मा एक सेकण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनंद और शुद्ध स्वभाव का भण्डार है, ऐसी चैतन्यचमत्कार वस्तु पर दृष्टि पड़ने से, निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यक्ज्ञान और निश्चय स्वरूपाचरण की दशा प्रगट होती है। मूलचंदजी!

बाद में, बाद में उसे व्यवहार आता तो है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव (आता है), परन्तु वह सब बन्ध का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है। उसे व्यवहार से मोक्षमार्ग ऐसा व्यवहारनय के कथन से आरोप से कहने में आता है। निश्चय से वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। ऐसा बीच में आता है उसको कोई कहता है कि वह आदरणीय है। तब ज्ञानी यहाँ ऐसा कहते हैं, वह आता है वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। नवनीतभाई! आता है सही, बड़े गणधर जैसे को, चार ज्ञान और चौदह पूर्व का ज्ञान और क्षायिक समकित, जितनी छद्मस्थ को ऊँची लब्धि की ऋद्धि जितनी हो वह सब, गणधर को सब ऋद्धि और लब्धि होती है। ऐसे गणधर को भी, आत्मा का निर्विकल्प स्वभाव अनुभव में आया, अकेला मैं परमात्मा मात्र ज्ञान का पिंड, पुँज ही हूँ। ऐसा अंतर अनुभव सम्यक् हुआ। वस्तु स्वरूप में स्थिरता भी बहुत जमी--चारित्र, चारित्र यानी स्वरूप में चरना, फिर भी गणधरों को भी बारह अंग की रचना का विकल्प, भगवान की भक्ति का विकल्प राग, भगवान की वाणी श्रवण करने का राग, अट्ठाईस मूलगुण पालने का, अर्थात् आता है उसको व्यवहारनय से ऐसा कहने में आता है कि अट्ठाईस मूलगुण पालने में आते हैं। निश्चय से ऐसे भाव, मुनि सच्चे संत को अंतर अनुभव का प्याला चारित्र सहित का फटा, उनको भी बीच में दया, दान, भक्ति, पूजा, प्रभावना आदि का भाव आवे, परन्तु वह आदरणीय है, निश्चय से अंगीकार करने लायक है, ऐसा नहीं है। आहाहा..! शांतिभाई! समझ में आया इसमें? लेकिन वह नहीं आता है, व्यवहार होता ही नहीं सम्यग्दृष्टि को, वह तो अकेले वीतरागभाव में ही रहता है ऐसा बनता नहीं। बराबर है? सोभागचंदभाई! वह बात यहाँ निश्चय-व्यवहार की संधि की बात करते हैं।

अज्ञानी या निश्चयाभास को निश्चय मानते हैं। निश्चयाभास यानी व्यवहार राग, दया, दान आदि भाव आवे उसको समझे नहीं, लावे नहीं, पहिचाने नहीं, करे नहीं और अकेला आत्मा वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. वीतराग करता रहे, अकेला आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसे राग का कोई सम्बन्ध नहीं है। बात सच्ची है, परन्तु वह खिले बिना, अकेले राग की क्रिया शुभ की है वह भी यदि छोड़ दे, तो पुण्यबन्ध भी जाये और

धर्म तो है नहीं। समझ में आया?

और पुण्यबन्धवाले जीव, उसे करते-करते अपना कल्याण इसमें से होगा, मार्ग यह है। राग, दया, कषाय मंद ऐसा माननेवाले भी मूढ जीव व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अकेला निश्चयाभासवाले, अकेला व्यवहाराभासवाले और निश्चय सहित के व्यवहारवाले, इस प्रकार इसमें तीन बात चलती है। समझ में आया इसमें?

तब यहाँ प्रश्न हुआ कि व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है। ऐसा ऊपर कहा। व्यवहार बीच में आता तो है। शुभराग व्रत का सम्यग्दृष्टि को, मुनि को, श्रावक को उसकी भूमिका प्रमाण में परलक्ष्यी भक्ति आदि का राग आये बिना नहीं रहता। अंगीकार करने जैसा नहीं है ऐसा यहाँ कहा। उसे संवर नहीं मानना, उसे धर्म नहीं मानना, उसे आश्रय करने लायक है और आदरणीय है ऐसा नहीं मानना। तब शिष्य को प्रश्न हुआ। वह कौन-सा प्रश्न उठा? व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं, वह कहा। व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश हो नहीं सकता। व्यवहार बिना सच्चा स्वरूप समझाया नहीं जाता। तो व्यवहारनय को क्यों अंगीकार नहीं करनी? समझ में आया? व्यवहार बिना समझाया नहीं जाता, उसके सिवा उपदेश दिया नहीं जाता। तो शिष्य का प्रश्न है कि जो निश्चय को समझाये ऐसा व्यवहार क्यों आदरना नहीं? मगनभाई!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उपकार करता है। धूल भी नहीं है उपकार। वह तो भेद द्वारा उसको समझाते हैं, वहाँ से हटकर समझे तो भेद द्वारा समझाया ऐसा कहने में आये। बड़ी सूक्ष्म बात।

भगवान आत्मा पुँज, चैतन्य का पुँज गंज है। उसमें से केवलज्ञान की पर्यायें अनन्त प्रगट हो ऐसा वह दल है आत्मा। उसका भान होने के बाद भी व्यवहार आवे, अंगीकार करना नहीं। और व्यवहार से, विकल्प भी उठे निर्विकल्प होते समय, यह वस्तु यह है, यह वस्तु यह है, अभेद चैतन्य हूँ, (ऐसा) विकल्प शुभ राग उत्पन्न हो, ऐसा आये तो सही, लेकिन उसको छोड़कर स्थिर होना वह आदरणीय है। समझ में आया? भाई! यह तो सत्य परमेश्वर के मार्ग की रीति है। जगत ने मानी हुई बात उसके साथ इसका कोई मेल नहीं है।

... अकेला चावल तौला नहीं जाता। अकेला चावल तौलते हैं? चार-चार मण का कहाँ से लाना? क्या कहते हैं उसे? छबड़ा, चार मण का छबड़ा कहाँ से ल लाना? पाँचसौ-पाँचसौ बोरी को तौलना होता है, सुबह से शाम तक। वह छबड़ा में चावल को तौला जाता है? वह बोरी के साथ चावल को तौला जाता है। तब कहते हैं कि चावल को तौलने में बोरी का उतना उपकार तो है न? वैसे व्यवहार

का उतना तो उपकार है कि नहीं कि उसके उपदेश बिना निश्चय समझा नहीं जाता। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया? उसका उत्तर सुन।

निश्चयनय से भगवान आत्मा, यह वस्तु स्वरूप '**परद्रव्यों से भिन्न,...**' शरीर, वाणी, मन, कर्म से भिन्न वस्तु है। और '**स्वभाव से अभिन्न...**' और अपने भाव से एकमेक वस्तु है। परवस्तु से भिन्न और अपने भाव से अभिन्न, ऐसी '**स्वयंसिद्ध वस्तु है;...**' अनादि की स्वयंसिद्ध सत्स्वरूप वस्तु है। '**उसे जो नहीं पहिचानते...**' हो, उसे जो नहीं पहिचानते हो, '**उनसे इसी प्रकार समझाते रहें तब तो वे समझ नहीं पाये।**' क्या समझाते रहें? कि परद्रव्य से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, परद्रव्य से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, तो वह समझे नहीं। क्या कहते हैं यह? परद्रव्य से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, लेकिन आप क्या कहना चाहते हो? '**उसे जो नहीं पहिचानते...**' अभिन्न वस्तु को। '**उनसे इसी प्रकार समझाते रहें तब तो वे समझे नहीं पाये।**' इसलिये उसे समझाने को '**व्यवहारनय से...**' अर्थात् शरीर की अपेक्षा द्वारा, शरीरादि, वाणी आदि, मन आदि। शरीरादि, मन और वाणी आदि '**परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा...**' यह मनुष्य सो जीव है, ऐसी पहिचान करायी। कहीं मनुष्य जीव नहीं है, मनुष्य तो यह मिट्टी है, जीव तो भिन्न चीज है।

यह मनुष्य सो जीव है, नारकी सो जीव है, देव सो जीव है। पृथ्वीकाय के यह जीव है, वनस्पतिकाय के, ये हरितकाय दिखती है न? वह तो शरीर है। वह वनस्पति का जीव है, वनस्पति के शरीर द्वारा अन्दर आत्मा की पहिचान करवाते हैं। पृथ्वीकाय, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस, वह '**जीव के विशेष किये--तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है,...**' देव जीव है, पशु जीव है, पर्याप्त जीव है, वाणी बोलनेवाला वाणीवाला जीव है, मनवाला जीव है, संज्ञी मनवाला जीव है, असंज्ञी मन रहित जीव है। रतनलालजी! समझ में आया? वह समझाने को है। '**मनुष्य जीव है, नारकी जीव है, इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहिचान हुई।**' यह आत्मा, यह आत्मा, देखो, यह गाय का आत्मा, यह घोड़े का आत्मा ऐसे कहने में आये। यह बालक का आत्मा। बालक और गाय-घोड़े का आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो उससे बिलकुल भिन्न वस्तु है। परन्तु भिन्न न समझे और चैतन्य, चैतन्य, चैतन्य अभिन्न (समझाते रहें), कदाचित् कोई व्यापक समझ ले, कोई एक ही समझ ले, अतः उस आत्मा की पहिचान कराने को सर्वज्ञ वीतरागदेव एवं संतों ने उसको शरीर की सापेक्षता द्वारा, वाणी की अपेक्षा द्वारा, मन मिला उसकी अपेक्षा द्वारा, यह मनवाला संज्ञी, वाणीवाला यह पर्याप्त जीव इस प्रकार उसकी पहिचान करवाई। एक बात हुई। समझ में आया इसमें कुछ? लेकिन उस शरीर, वाणी, मन को आत्मा

जानना नहीं। वह तो जड़ चीज है। शरीर, वाणी, मन, पर्याप्त आदि तो जड़ मिट्टी की चीज है। वहा आत्मा-बात्मा नहीं है। लेकिन आत्मा नहीं समझता है उसे समझाया कि यह आत्मा है। ऐसा कहकर, उसे निकाल देने के बाद जो बचे सो जीव है। समझ में आया? एक बात हुई। '**उन्हें जीव की पहिचान हुई।**' इस प्रकार कहने से। मनुष्य जीव, नारकी जीव, पर्याप्त जीव। जीव यह। अन्दर पर्याप्त का विशेष करके समझाया, नारकी को अपेक्षित करके समझाया। ओहो..! जीव तो अन्दर भिन्न चीज है। स्वयं की शक्ति और स्वयं की दशा सहित का आत्मा, सो पर से त्रिकाल भिन्न है। पर के साथ उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उस व्यवहार द्वारा जीव को समझाने के लिये यह कथन आचार्यों ने किये हैं। लेकिन वह व्यवहार आदरणीय नहीं है, अंगीकार करने लायक नहीं है। शरीर को जीव मानना नहीं। वह आगे लेंगे।

'**अथवा...**' अब अन्दर आये। '**अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके...**' भगवान आत्मा एकरूप वस्तु है अन्दर, उसके प्रकार और भेद उत्पन्न करके--यह ज्ञान, दर्शन, आनंद, अस्तित्व, वस्तुत्व आदि '**गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये।**' उसे बताया कि देख, ये जाना सो आत्मा, देखे सो आत्मा, माने सो आत्मा, जिसमें वीर्य की स्फुरणा ज्ञान की रचना हो सो आत्मा, इस प्रकार आत्मा अभेद और एक वस्तु होने पर भी उसके विशेष करके कि ज्ञान, दर्शन आदि गुण-पर्यायरूप (जीव है)। जाननेवाला आत्मा। विश्वास कौन करता है? जानता है कौन? देखता है कौन? वीर्य की स्फुरणा करुँ वह कौन करता है? उसके द्वारा उसे, अभेद चीज को भेद करके समझायी। परन्तु वह भेद अंगीकार करने लायक नहीं है। भेद अंगीकार करने लायक नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

'**तब जाननेवाला जीव है,...**' ऐसा उसे निर्णय हुआ। नहीं तो, जाननेवाला जीव, वह तो भेद हुआ। लेकिन जाननेवाला जीव है, ज्ञान सो जीव, दर्शन सो जीव, जाननेवाला आत्मा, देखनेवाला भगवान, माननेवाला आत्मा '**इत्यादि प्रकार सहित उनको जीव की पहिचान हुई।**' भेद करके समझाया तब वह समझा। लेकिन भेद है वह अंगीकार करने लायक नहीं है। आहाहा..! भेद भी आदरणीय नहीं। इसके बदले, बाह्य के व्रत और तप की जड़क्रिया को आदरणीय माने और अन्दर का शुभराग, दया, दान, व्रत का शुभ भाव, व्रत पालो, उपवास करो, धर्म है। बड़ी मिथ्यादृष्टि का सेवन है। अनंत काल का जड़ निगोद, जड़ का सेवन करता है। समझ में आया? तब '**उनको जीव की पहिचान हुई।**'

दो बात करी। नारकी जीव, मनुष्य जीव ऐसा करके जीव जाना और विशेष करके समझाया कि देख, यह ज्ञान जाननेवाला जीव, देखनेवाला जीव तब जीव की पहिचान

हुई। दो बात तो वस्तु की करी, अब मोक्षमार्ग की बात करते हैं।

'**तथा निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है;...**' अब मोक्षमार्ग की बात आयी, पर्याय की। पहले वस्तु की ली थी। निश्चय से आत्मा में जितना पुण्यभाव, शुभभाव उत्पन्न हो, व्रत, नियम, दया, दान का उससे रहित आत्मा अखंडानंद प्रभु पूर्ण शुद्ध चैतन्य उसके अंतर के स्वभाव में भरा है, जो राग में मिश्रित होता था, वह ज्ञान अंतर में मुड़ा, अंतर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, वीतरागता की रचना, चारित्र की हो ऐसा वीतरागभाव ही एक मोक्षमार्ग है। समझ में आया? बीच में दया, दानादि (आते हैं), वह तो निमित्त देखकर बात करेंगे, लेकिन वह मोक्षमार्ग नहीं है।

बहुत कठिन जगत को। अवतार आया और बाहर से कुछ मानकर संतोष करवाया और संतोष हो गया, अपने कुछ करते हैं। किन्तु अवतार चला जायेगा और ऐसा अवतार फिर से. (मिलना दुर्लभ है)। सब अवसर आ गया है। टोडरमल ने लिखा है न? सब अवसर आ गया है। तेरे प्रमाद, अज्ञान के आलस्य से वस्तु छूट गयी है। उसको अन्दर स्वयं अपने आप को इस विधि से ग्रहण किया जाता है, वह बात अब तक उसे सुहाती नहीं है। व्यवहार के लेख आये न शास्त्र में? संयम, तप, नियम, व्यवहार के विकल्प अशुभ से बचने के, वह साधन है और वह भी मोक्षमार्ग है, वह भी धर्म का कार्य है, ऐसा माननेवाले बिलकुल रास्ता भूल गये हैं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- किन्तु कौन-सी क्रिया? वही बात कहते हैं। सच्ची बात है। वह बात (संवत) १९९० में संप्रदाय में एक जन के साथ हो गयी थी। समझ में आया? सब से पुराने थे, बहुत व्रत (पालते थे)। संप्रदाय में थे तब, हाँ! उन्होंने कहा, ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष कहा है न? १९९० की बात है। मैंने कहा, कौन-सा ज्ञान और कौन-सी क्रि/या? देह की क्रिया नहीं। यह तो जड़ है, मिट्टी है, यह हिले, चले और ऐसा-ऐसा हो वह तो उसकी क्रिया है, उसमें आत्मा को क्या है? आत्मा में राग हो अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य का वह भी क्रिया नहीं। आहाहा..!

भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञान की चैतन्यज्योत है, उसका अंतर में भान होकर और उसमें ज्ञान में लीनता--एकाग्रता का आचरण, स्वरूपाचरण स्थिर हो, उसको क्रिया कही है। वह ज्ञान और वह क्रिया वह मोक्ष का कारण है। सोभागचंदभाई! ये (बाहर की क्रिया) नहीं। ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष। आत्मा का ज्ञान। अरे..! अनंत काल में स्वज्ञेय सन्मुख देखा नहीं है। अनंत-अनंत काल व्यतीत हुआ, जैन का दिगंबर साधु अनंत बार हुआ, बारह व्रत और पंच महाव्रत और छः-छः महिने के उपवास किये, परन्तु यह ज्ञानस्वरूपी एक द्रव्य पूर्ण वस्तु है उसके सन्मुख देखने का उसने कभी प्रयत्न

नहीं किया। समझ में आया? और इस प्रयत्न के बिना आत्मा की श्रद्धा और सम्यग्दर्शन हो, ऐसा तीन काल तीन लोक में बनता नहीं। समझ में आया?

इसलिये यहाँ कहते हैं, '**निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है।**' वह राग बीच में आये, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आवे, भक्ति आवे, पूजा आवे वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा..! है न उसमें? उसमें है? रतनलालजी! है उसमें? देखो! कभी वाँचन नहीं किया होगा। पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा है? नहीं पढ़ा। लो, ये भजनमंडली के अग्रेसर ने पढ़ा नहीं है। अभी तो बहुत बोलते हैं, आत्मानुभव बिना मोक्ष नहीं। नहीं आता है? ताराचंदजी! आत्मा का मैंने कभी अनुभव नहीं किया, मैंने आत्मा को जाना नहीं और आत्मा के अनुभव बिना मोक्षमार्ग तीन काल में नहीं है। राजपाट छोड़कर त्यागी हो, साधु हो और बालब्रह्मचारी हो, पंच महाव्रत पालता हो, सच्चे हाँ! अभी तो पंच महाव्रत सच्चे भी किसी के पास नहीं है, व्यवहार के। समझ में आया? रूपचंदजी! यह तो सत्य बात है, उसमें क्या है? माने न माने उसकी स्वतंत्रता है। अनादि काल से स्वच्छंद सेवता आया है।

यहाँ तो कहते हैं कि बाह्य आचरण से पार और आत्मा अल्पज्ञ की पर्याय में पूर्ण आत्मा नहीं है। भगवान अल्पज्ञ दशा वर्तमान वर्तती है, उसमें पूर्ण आत्मा नहीं है। परन्तु अल्पज्ञ द्वारा सर्वज्ञस्वभाव को पकड़ सकते हैं। समझ में आया? राग से नहीं, विकल्प से नहीं, पुण्य से नहीं, भक्ति-पूजा लाख-क्रोड़ समेदशिखर की भक्ति से, यात्रा से नहीं। समेदशिखर की यात्रा से नहीं। भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानंद प्रभु, एक समय में पूर्ण केवलज्ञान को .. में रखनेवाला ध्रुव, उसके वर्तमान ज्ञान की अल्पज्ञता को बहुमान करके अन्दर में ऊतरना, अल्पज्ञ का मान छोड़कर, विकल्प का छोड़कर, निमित्त का छोड़कर अल्प ज्ञान का मान छोड़कर अल्प ज्ञान द्वारा सर्वज्ञ (स्वभाव) तरफ ढलना, ऐसा प्रयत्न उसने अनंत काल में किया नहीं। और इसके बिना उसे सम्यग्दर्शन हो या सम्यक्ज्ञान हो, ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं बनता। समझ में आया?

लाख शास्त्र पढ़ा हो, क्रोड़ पढ़ा हो, भगवान की श्रद्धा के लिये सर कटवाता हो, भगवान तीर्थंकर की श्रद्धा के लिये, समवसरण ऐसा होता है, फलाना ऐसा होता है, पाँचसौ धनुष का देह होता है, महाविदेह है, सब आस्था रखता हो, फिर भी स्वज्ञेय को पकड़ने का प्रयत्न स्वज्ञान की पर्याय अंतर में होता है, उसको पकड़े बिना वह सब थोथा है। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह किसकी बात चलती है? सेठ दूसरे की बात करते हैं। दूसरे के

साथ चर्चा होती है न, ऐसे इस काल में ऐसा हो सकता है? तो यह किसकी बात करते हैं? इस काल में यह न हो तो, धर्म नहीं है ऐसा कहो। इस काल में धर्म नहीं है, और धर्म हो तो सम्यग्दर्शन से धर्म का प्रारंभ होता है। इसके सिवा तीन काल तीन लोक में धर्म की शुरूआत होती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा अरे..! निज चैतन्य का गट्ठा, चैतन्य की गाँठ, पूर्ण अनंत गुण का गट्ठा उसके सामने उसने कभी नज़र नहीं की। 'नयनने आळस रे मैं निरख्या न हरिने जरी।' समझ में आया? उसमें आता है न? वह सब तो नासमझ से बात कही है। 'मारा नयनने आळसे रे, मैं निरख्या न नयणे हरि' वह नानालाल कवि का है। कुठ ठिकाना नहीं, ऋषि को मारना, ऐसा करना... अरे..! जगत के प्राणी तुम्हारी चीज तुम्हारे अंतर में पड़ी है। उसको पहिचानने को, उसकी श्रद्धा और उसमें रमने के प्रयत्न बिना, जितना बाह्य शुभाशुभ राग का प्रयत्न, वह सब आत्मा की शांति के लिये निरर्थक हैं। समझ में आया?

ऐसा बताकर भगवान ने, निश्चय से तो वीतरागभाव को मोक्षमार्ग कहा है। समझ में आया? निश्चय से भगवान प्रभु जिसकी शांति का, जिसके बड़े कूप भरे हैं, जिसके स्वभाव में अकषाय शांति पूर्ण भरी है। उसको यह राग और विकल्प जो भक्ति, दया, दान का आये उससे पृथक् करके आत्मा की अंतर श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता करनी वह एक ही निश्चय से वीतरागभाव मुक्ति का राह और पंथ है। समझ में आया? कितना सुनाई देता है? आठ आना? थोड़ा-थोड़ा। क्या हो? वह अपनी लायकात के कारण है कि शरीर के कारण है? आहाहा..!

अरे.. प्रभु! कहते हैं कि त्रिलोकनाथ देवाधिदेव जैन परमेश्वर, जिनको एक समय में पूर्ण ज्ञान का प्रकाश असंख्य प्रदेश में सर्वप्रत्यक्ष हो गया है। भगवान कहते हैं कि मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है। छूटने का पंथ राग से हो, व्यवहार का दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम सब राग है उससे, छूटने का भाव सम्यग्दर्शन हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। आहा..! बहुत सूक्ष्म। तभी तो मान में चढा दिया है न। और सेठ प्रसन्न हो। वह कहे, अपने तो कर सकते नहीं, बेचारे कुछ तो पालते हैं। अपने से तो अच्छे हैं। नरभेरामभाई! अपने से अच्छे हैं? ना, ना। बिगड़े हुए दूधमें से फ़िकी छाछ भी नहीं बनती। छाछ समझते हो? रतनलालजी! छाछ नाम मट्ठा। मट्ठा होता है न? पतला मट्ठा हो तो भी रोटी चले, लेकिन बिगड़ा हुआ पाँच मण दूध हो, बिगड़ा हुआ, रूपचंदजी? क्या करे? अरे..! दो शेर पीयेगा तो परेशान कर देगा। ठंडी रोटी खायी उतनें में ताराचंदजी को बुखार आ गया। पहले कहते थे। तो ऐसा खाये तो? दूध बिगड़ गया है। पाँच मन लाये थे, लेकिन अब फैंक देना चाहिये।

वर्तमान में दूध महँगा, दस रूपये का मण, पचास रूपये का पाँच मण। खाओ, थोड़ा-थोड़ा डालो कढी में। बिगड़ेगा, खाया हुआ बाहर निकाल देगा। समझ में आया? न खाने का हो तो ऐसा नहीं खाना अच्छा है। रोटी ज़हरवाली हो और अच्छी न मिले तो ज़हरवाली रोटी खाना अच्छा नहीं है। हैं? भूखे रहना अच्छा है, किन्तु ज़हरवाली रोटी तो है हाँ, मामा आज खीर दे गये हैं। लेकिन मामा के घर एक-दो सदस्य, ढ़ाई बजे खीर होगी। बच्चे तड़पे। ढेबरा (खाने की एक चीज) बनाकर दे, ढेबरा कर दे तो वहाँ कम खाये। इसलिये जल्दी करे तो पुसाता नहीं, दस बजे तो लगने लगा, कब होगा, कब होगा? फिर कहे कि यह रोटी पड़ी है, लेकिन इसमें .. जैसा लगता है, वह होती है न? क्या कहते हैं? छीका, छीका में रात को कोई सर्प बोलता था, डिग्गा बजाता था, डिग्गा। वह वहाँ आया हो तो मालूम नहीं। थोड़ा खा ले न। नहीं, नहीं, नहीं। अढ़ाई बजे तक भूखे रहना अच्छा है। लेकिन ज़हरवाली रोटी खाना अच्छा नहीं है। मर जायेगा वहीं के वहीं, भूखा मनुष्य ही नहीं रहेगा।

ऐसे आत्मा के वास्तविक स्वरूप के भान बिना अकेले व्यवहार का राग और पुण्य से धर्म मनानेवाले और माननेवाले, और अपने से तो अच्छे हैं, ऐसा माननेवाले ज़हरवाली रोटी .. डालकर खाते हैं। नेमचंदभाई! बात तो आये तब (आये)। अब तो २७ वर्ष पूरे होते हैं कल। परिवर्तन को २७ वर्ष पूरे होते हैं, कल २८वाँ शुरू होगा। फिर तो जो वस्तु हो वह आये न, दूसरी कहाँ-से आये? मनसुखभाई! क्या होगा यह? अपने महाराज जो भी है वह अच्छे हैं। कहते हैं कि ज़हर है। जिसका व्रत और नियम का भी ठिकाना नहीं है और कदाचित् कोई शुभ भाव अच्छा हो तो वह धर्म नहीं है और धर्म है और धर्म करते हैं, ऐसा मानता है, मनवाते हैं और मान्यता को अच्छी समझते हैं, वे धर्म के पक्के विरोधी शत्रु हैं।

एक जगह श्रीमद् तो कहते हैं एक पत्र में, कि जो कोई कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र है, जिसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं है और विरोध भाव का सेवन करनेवाले हैं, उसे साक्षात् धर्म का घातक जाने बिना तेरा कल्याण हो ऐसा नहीं है। एक पत्र में आता है। लालचंदभाई! पत्र में आता है, एक पत्र है, इस ओर है। समझ में आया? है कि नहीं? कहाँ गया पुस्तक? नहीं है यहाँ? नहीं होगा। इस ओर के पृष्ठ पर है। साक्षात् कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र। जो कोई शुभ दया, दान, व्रत से धर्म मानता हो, मनवाता हो, मानता हो उसे अच्छा जानता हो, दीक्षा को दीक्षा मानता हो ऐसे कुगुरु को, कुशास्त्र को या कुधर्म को साक्षात् धर्म का घातक जाने बिना उसका प्रेम और प्रीति हटेगी नहीं। नवनीतभाई! उनके समय में तो गृहस्थाश्रम था

इसलिये लोग जल्दी विश्वास नहीं कर पाये। लो, आप त्यागी की निंदा करते हो, और अपने घर पर स्त्री-पुत्र है। सुन न। स्त्री-पुत्र कहाँ है? अन्दर आत्मज्ञान की प्रजा उत्पन्न हुई है, तुझे क्या मालूम पड़े? समझ में आया? उसको स्त्री, पुत्र है। और वह बेचारे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करे। और उसे कहते हैं मूढ है और स्वयं ज्ञानी! सुन न। बाहर के त्याग में धर्म मानकर मनाया है, बड़ा जैनशासन का विरोधी और वैरी है। समझ में आया?

'जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत, बहु .. परवरियो, तेम तेम जैनशासननो वेरी, जो नवि निश्चय गरियो।' निश्चय तत्त्व क्या है उसके भान बिना व्यवहार क्रियाकांड में धर्म मानकर मनाता है, वह 'जेम जेम बहुश्रुत' बहुत सयाना हुआ, पंडित हो गया, बड़ा पंडित हुआ कि जैनशासन का ऐक वैरी जागा? आहाहा..! 'जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत,' और उसको माननेवाले लाखों और क्रोड़ों लोग निकले, वह जैनशासन का वैरी है। चींटी को पँख मिली, पानी में गिरने को। समझ में आया? वह है, हाँ! ठाणांग में छठवें ठाणांग में है।

यह बात की थी, संवत १९७८ में। कहाँ गये? १९७८में की थी। उस दिन कहा था, फिर गिरे। ७८ में कहा था, देखो, ठाणांग के छठवें ठाणांग में (ऐसा लिखा है)। लेकिन खुल्ला थोड़े ही कह सकते हैं, समाज में रहे हों? कहो, समझ में आया? फिर १९८० में... ७८ का चातुर्मास राणपुर में था। उस दिन यह गाथा और ठाणांग के छठवें ठाणांग में ये छः बोल है, ऐसा कहा था।

आत्मा का निश्चय स्वरूप क्या है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान बिना अकेला व्यवहार क्रियाकांड से साधु, साध्वी और मनाते हैं, और मानते हैं (तो) कहते हैं कि जैसे उसे जानपना ज्यादा हो उतना उसको वैरीपना बढ़ेगा। उसे माननेवाले बढ़ेंगे, उतना वैरीपना जैनशासन का बढ़ेगा। उसे बहुत पँख मिली। इतने मानते हैं, असत्य थोड़े ही होगा? 'जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत, बहु शिष्ये परवरियो'। उसके शिष्य की परशाखा, शाखा, शाखा, दोसौ साधु (हुए)। इसने दोसौ साधु बनाये हैं। तो क्या है? कहते हैं कि निश्चय तत्त्व की श्रद्धा और ज्ञान के भान बिना वह शिष्य सहित दिखे वह, 'तेम तेम जैनशासननो वेरी'। एक जैनशानस वीतरागभाव (है)।

है न यहाँ, देखो, जैनशासन माने (क्या)? वीतरागभाव आत्मा का शासन है। उसे पहिचानता नहीं, उसे मानता नहीं है और बाह्य के व्रत, नियम और क्रियाकांड से धर्म मनाते हैं, वह जैनशासन में एक नया अंगारा जागता है। ऐसा वीतराग त्रिलोकनाथ फरमाते हैं। बड़ी कठिन बात भाई! जेठालालभाई! क्या है यह? उसे देखकर कहे, जय नारायण! नग्न देखे तो वह, वेष देखे तो वह, दंड देखे तो.... अरे.. सुन न।

बालं पश्यंति लिंगं। अज्ञानी भेख को माननेवाले हैं। मध्यम बुद्धिवाले कदाचित् कुछ क्रियाकांड करे उसको देखनेवाले हैं। किन्तु तत्त्वदृष्टि और तत्त्वज्ञान सच्चा क्या है, उसको देखनेवाला तो एक ज्ञानी और सच्चा अभिलाषा हो सकता है। अन्य उसका बहुमान नहीं कर सकता। समझ में आया? वह उसमें आता है, बालां पश्यंति, आता है न? आता है। बालां पश्यंति। मध्यमवाले क्रिया को (देखते हैं)। तत्त्वज्ञानी जीव, तत्त्वदृष्टि सत्य स्वरूप क्या है, उसको देखनेवाले, जाननेवाले और अनुभव करनेवाले हैं।

यहाँ कहते हैं, '**निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है।**' उसमें तो छः बोल कहे हैं, ये तो तीन कहे। श्रुत, बहुत माननेवाले, बहुत शिष्य, बहुत तपस्या करता हो, बहुत तपस्या करता हो, लोगों को ऐसा लगे, आहाहा..! छः छः महिने की तपस्या करे वह थोड़ा ही झूठ बोलेगा? उसका वचन पड़ते ही लोग उठा ले। और स्त्री, पुत्रवाला हो और सत्य बोलता हो, अंतर धर्म के भान सहित। स्त्री, पुत्र और क्रोड़ों का धंधा करता है, अभी तो कल उसकी स्त्री को पुत्र हुआ, लो। सुन न, तुझे तत्त्व क्या मालूम पड़े? समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव, नहीं मानता उसकी स्त्री है, नहीं मानता वह राग को अपना स्वरूप। ऐसा जो राग से भेद हो गया है, उसको परखनेवाले उसके परीक्षक तो दूसरी जाति के होते हैं। समझ में आया? अज्ञानी तो कहे, कल तो उसकी स्त्री प्रसुति हुई है। और हम तो आजीवन, बीस वर्ष की वय से ब्रह्मचर्य पालते हैं और ये कहते हैं कि ज्ञानी है। सुन न। ज्ञानी माने क्या? तो क्या वह राग की क्रिया न हो तो ज्ञानी कहलाये? ९६ हज़ार स्त्रियों के साथ चक्रवर्ती का, तीर्थंकर का ब्याह होता है। क्षायिक समकिती और तीन ज्ञान के धनी हैं। समझ में आया? और आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री के सामने देखे नहीं, ऐसा जीव भी पुण्य और देह की क्रिया से आत्मलाभ होता है ऐसा माननेवाला बड़ा मूढ और मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? लेकिन श्रद्धा की शक्ति और श्रद्धा की शक्ति का लाभ कितना है, यह जिसको मालूम नहीं... नवनीतभाई! श्रद्धाशक्ति की कितनी क़िमत है और उसका कितना लाभ है। और कषायशक्ति पुण्य और पाप का भाव कषायशक्ति, उसमें कितना नुकसान है और उसका फल कितना नुकसानदायक है, इसके ज्ञान बिना के ज्ञानी का माप आचरण पर से निकाले और अज्ञानी के बाह्य त्याग माप से उसका धर्मीपना कहे, बिलकुल उलटे मार्ग पर चले हैं। समझ में आया?

उसमें आता है, हाँ! सोनगढ़वाले मुनि को मानते नहीं, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। सुन न, मुनि था कब? माने कैसे? आहाहा..! वेश पहनकर बैठे उसको मुनि माने। धीरुभाई! बात तो बहुत अलग है। दोनों धीरुभाई बैठे हैं। यह बात तो ऐसी

है प्रभु, यह किसी का मक्खन की और पक्ष की नहीं है। सत्य का ढिंढोरा यह है, बापू! तुझे ज़हर उतारना हो, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का ज़हर जब तक न ऊतरे, तब तक सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का बहुमान अंतर में आये नहीं। और उतना बहुमान आये फिर भी चैतन्य का बहुमान न आये तब तक उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया?

आचार्य भगवान वीतरागभाव को मोक्षमार्ग कहते हैं। वह कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग है। वीतरागभाव भी मोक्षमार्ग है और राग बीच में आये, व्रत, नियम वह भी एक मोक्षमार्ग है। उतना तो छूटा न, दुकान पर बैठता था और तराजु में तौलता था उससे तो वहाँ बैठा है, भेष बदलकर, अच्छा है न? वह बिगड़ा हुआ दूध है। हाय.. हाय..! मार डालेगा उसको और जो खायेगा उसको--मानेगा उसको। नवनीतभाई! ये वीतराग पुकार करते हैं। सर्वज्ञदेव अनंत, कुन्दकुन्दाचार्य आदि महा संत, भगवान के पास जाकर जो वस्तु (लाये), अंतर में तो बहुत थी, लेकिन कुछ स्पष्टता और निर्मलता भगवान समक्ष करके आये। अरे..! वीतराग वीतरागभाव को मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? बीच में राग दया, दानादि का भाव आये उसे भगवान मोक्षमार्ग नहीं कहते।?

अनंत काल में प्रगट नहीं हुआ ऐसे अपूर्व भाव बिना उसे मोक्षमार्ग किसी भी प्रकार से नहीं कह सकते। अपूर्व किसे कहें? आहाहा..! पूर्व में अनंत काल में व्यवहारस्वर्ग में गया, धूल की श्रीमंतता मिली, अरबोंपति अनंत बार हुआ, क्या हुआ उसमें? समझ में आया?

लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो।
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो।
वधवापणुं संसारनुं... पर की अपेक्षा लेकर भाव हो वह।
वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो।
एनो विचार नहीं अहोहो एक पळ तमने हवो।

यह १६ वर्ष की उम्र में कहते हैं। श्रीमद् राजचंद्र १६ वर्ष और ४ महिने की उम्र थी तब १०८ पाठ बनाये, १०८ पाठ। माला का १०८ मणका होता है न, इसलिये १०८। नाम दिया मोक्षमाळा। १६ वर्ष की उम्र में। उम्र तो देह की थी, आत्मा को कहाँ उम्र थी? वह तो अनादि का है। १६ वर्ष की आयु में जगत समक्ष पुकार की है, कहाँ बढ़ गया तू? हमको माननेवाले बहुत हैं। सब सुझन है। सोझा समझते हो? सुझन। सुझन को निरोगता कहते हैं? सुझन आती है सुझन, तो शरीर फूल गया। पुष्ट हुआ? मर जायेगा अभी, सुझन कम होते ही अन्दर जलन शुरू होगी।

ऐसे जगत का पुण्य-पाप का ठाठ, उसको माननेवाले ज्यादा और धर्मी को माननेवाले

कम, इस प्रकार माप करके धर्म की क़िमत करते हैं, वह सुझन को निरोगता मान बैठे हैं। समझ में आया?

भगवान आचार्य कहते हैं, निश्चय से, वास्तव में तो। तब वह कहते हैं, निश्चय से। लेकिन व्यवहार (क्या)? सुन न, व्यवहार। व्यवहार--बोरी बीच में आये। आये बिना रहे नहीं, हाँ! धर्मदृष्टि हुई और देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान न हो, और वात्सल्य एवं प्रेम न हो ऐसा तीन काल में बने नहीं। लेकिन वह वात्सल्य एवं प्रेम राग का भाग है, वह निश्चय से मोक्षमार्ग नहीं है।

मुमुक्षु :-- बोरी का भोजन नहीं पकाया जाता।

उत्तर :-- भोजन नहीं पकाया जाता। बोरी को साथ में नहीं पकाते। चावल कम हुए तो अढाई शेर की बोरी डाले। राग होता है, जिसके निमित्त से स्वयं को ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र हुआ ऐसे त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का उपकार व्यवहार से शुभ भाव उपकार का, वात्सल्य का आये बिना रहे नहीं। लेकिन उसे, भगवान कहते हैं, छूटने के मार्ग में वह आया तो सही, लेकिन वह छूटने का पंथ नहीं है। छूटने के मार्ग में... छूटने का समझते हो? मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग में आया सही। वह आता है न? समयसार में आता है। व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग के अन्दर व्यवहार आता है सही, लेकिन उसको धर्म माने और मोक्षमार्ग माने तो मिथ्या एकांत मिथ्यादृष्टि है। जगत को मालूम नहीं। यूँ ही अवतार आया, चींटी, मकोड़ा, लट, पिल्लु, कूत्ते का बच्चा मरे वैसे ये मरेंगे। तत्त्व के भान बिना कलबल करते-करते कषाय में मरेंगे। फिर त्याग हो या भोगी हो। समझ में आया?

वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम
रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताको नाम।

आता है न? बनारसीदास में आता है। बनारसीदास है न? समयसार नाटक (के रचयिता)।

वस्तु विचारत ध्यावतैं मन पावै विश्राम,
रसस्वाद सुख उपजे, अनुभव ताको नाम।

अनुभव मोक्ष का मार्ग (है)।

अनुभव रत्नचिंतामणि अनुभव है रसकूप
अनुभव मारग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

ये वीतरागभाव चलता है वह, हाँ! अनुभव कहो या वीतरागभाव कहो। आहाहा..! समझ में आया? पहले उसकी श्रद्धा करके दृढ़ होकर खड़ा रहे, फिर उसके अंतर भाव में वीर्य प्रगट करे तो काम कर सके, नहीं तो काम नहीं कर सकेगा। समझ

में आया? 'वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम।' मन विश्राम को प्राप्त हो। विकल्प (शांत हो जाये)। निभ्रत पुरुषों द्वारा अनुभव करने योग्य वह आत्मा है। निभ्रत नाम निश्चिंत पुरुषों द्वारा, जिन्हें चिंता के संकल्प-विकल्प की हारमाला व्याप्त हुयी है, उससे आत्मानुभव हो सके ऐसा तीन काल में बन सकता नहीं। पहली गाथा आ गयी है। निभ्रत, निभ्रत--निश्चिंत पुरुषों। हो, जो भी हो जगत का, मेरा और उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। शुभ और अशुभ भाव हो, उसमें मेरा हित और मेरी संपदा उसमें कुछ नहीं है। मेरी संपदा चैतन्यज्योत की बारंबार उस ओर नज़र करके स्थिर होवे, उसको अनुभव कहने में आता है और उसको वीतरागभाव कहने में आता है, उसे मोक्षमार्ग कहने में आता है। समझ में आया?

लेकिन '**उसे जो नहीं पहिचानते...**' अब कहते हैं, वीतरागभाव मोक्षमार्ग है, इतना कहने से वह न समझे तब '**उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पायें। तब उनको...**' समझाने को, इसलिये उनको समझाने को '**व्यवहारनय से, तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक...**' माने क्या? व्यवहारनय से शब्द एक ओर रखो। '**तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक व्यवहारनय से परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' ऐसे लेना। क्या कहा, समझ में आया? व्यवहारनय द्वारा तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान ऐसे नहीं। जो वीतरागभाव को नहीं पहिचानता, चिदानंद निर्विकल्प अनुभव, राग का विकल्प नहीं ऐसी अंतर की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता वह मोक्षमार्ग, उसे न पहिचाने उसको व्यवहार से समझाये। कैसे? व्यवहारनय से, इतना। व्यवहारनय से तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक ऐसा नहीं। तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान तो सच्चा, निश्चय। सम्यक् तत्त्वश्रद्धान तो रागरहित निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय ज्ञान स्व का ज्ञान, स्व की श्रद्धा और स्व का ज्ञान, ऐसे तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक व्यवहारनय से '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' निमित्त मिटाने की। व्रतादि की क्रिया में, पर ऊपर का लक्ष्य थोड़ा कम हो और स्व में लक्ष्य आता है, इतना परद्रव्य के निमित्त का संग छूटने की अपेक्षा से, '**निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' परद्रव्य का आलंबन छोड़ने की अपेक्षा द्वारा '**व्रत, शील, संयमादिरूप वीतरागभाव के विशेष...**' विशेष यानी है तो राग, विकल्प, लेकिन उसको पहिचान करवाते हैं कि देख, ऐसे व्रत, नियम जहाँ हो वहाँ अन्दर वीतरागभाव होता है। अव्रत भाव और पाप का सेवन करता हो और वहाँ वीतरागभाव चारित्र हो, ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं?

शिष्यने पूछा है कि व्यवहारनय यदि निश्चय को समझाता है तो उसको किसलिये अंगीकार न करना? उसका यह उत्तर देने में आता है। भाई! वीतरागपने मोक्षमार्ग आत्मा... वीतराग माने क्या? केवलज्ञानी? ऐसा कोई समझे। वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग

यानी केवलज्ञानी को मोक्षमार्ग होता है? ऐसा नहीं। वीतराग अंतर राग की रुचि पुण्य-पाप की छूटकर और स्वभाव की दृष्टि और रुचि और परिणति एवं स्थिरता जमी, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है, अन्य नहीं। उसको न समझे उसे व्रत, शील और निमित्तादि पहलू से वीतरागभाव का भेद यानी प्रकार अनेक, अनेक द्वारा उस वीतरागभाव के एकपने को समझाते हैं। समझाना है वह, अन्दर राग रहित स्थिरता होती है वह। बहुत सूक्ष्म भाई! उन्हों ने नव अध्याय में गृहस्थाश्रम में रहकर, हज़ारों आचार्यों के हृदय का मेल करके यह बनाया। उसे पढ़ने का भी समय नहीं है। ..भाई! बाप पैसा छोड़ गया हो, पचास लाख, मुरदा निकालने से पहले जाँच ले, किसी के हाथ में कुँची नहीं है न? मुरदा बाद में निकालो। पचास लाख रूपया रखा है, ऐसा सब सुनने में आता है, है कि नहीं? जीवित थे तब तक नहीं देते थे, यहाँ कुँची लगाकर रखते थे। मरने के बाद शीघ्र जाँच करने जाये कि पिताजी क्या छोड़कर गये हैं?

ऐसे सर्वज्ञदेव और महान संत तत्त्व की क्या बात छोड़ गये हैं उसे देखने का, वाँचन करने का भी अवसर मिले नहीं। हम धर्मी हैं। ना कह सकते हैं? धर्मी तो नाम निक्षेप से हो, स्थापना निक्षेप से हो, योग्यता से हो और वर्तमान प्रगट दशा से भी हो। नाम कहावे धर्मी, लक्ष्मीवंत कहे और लकड़ी बेचता हो। नाम क्या? लक्ष्मीवंत, लकड़ी बेचता है न दो आने की? नाम में क्या है? पैसा आ गया? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जो वीतरागभाव को नहीं जानता हो, उसे परद्रव्य का आलम्बन पर का लक्ष्य छुड़ाने की अपेक्षा से व्रत, शील, संयम आदि को वीतरागभाव के विशेष द्वारा बताने से उसे वीतरागभाव की पहिचान हुई। देख, वीतराग अन्दर हो तो उसे ऐसा होता है। व्रत होता है, नियम होता है, शील होता है, संयम होता है, इन्द्रियदमन होता है। ऐसे भाव से बताया। कहो, समझ में आया?

'**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना...**' बहुत जगह ऐसा ही लेते हैं, समझ में आया? इस प्रकार समझना, इस प्रकार समझना। '**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना।**' किस तरह समझाना? उसे वीतरागभाव समझ में आये नहीं, जीव समझ में आये नहीं, इसलिये उसे व्यवहार से भेद करके समझाया है। नर्क और मनुष्य देह की अपेक्षा रखकर समझाया कि देख, यह देह सो आत्मा, यह घी का घड़ा, यह घी का घड़ा। यानी कि घी का घड़ा है वह मिट्टी का घड़ा है, परन्तु घी का नहीं है। इसी प्रकार शरीरवाला यह जीव, यानी कि शरीरवाला नहीं है, परन्तु जीव ज्ञानस्वरूप मूर्ति अन्दर भिन्न है, उसको पहिचानने के लिये सब व्यवहार से भेद किये हैं। कहो, समझ में आया? अब निषेध करते

हैं, देखो!

'**तथा यहाँ व्यवहार से नर-नारकादि पर्याय ही को जीव कहा, सो पर्याय ही को जीव नहीं मान लेना।**' शरीर से पहिचान करवायी कि यह मनुश्य है वह जीव है। मनुष्य तो धूल है, यह तो अजीव है। वहाँ कहाँ जीव है? जीव तो भिन्न वस्तु है। पर्याय को जीव (नहीं मानना), पर्याय यानी शरीर, उसको जीव नहीं मान लेना। क्योंकि शरीर तो '**जीव-पुद्गल के संयोगरूप है।**' जीव और शरीर के पुद्गलरूप यह तो वस्तु है। उसे आत्मा नहीं कहते। किन्तु वह समझता नहीं है इसलिये उसे कहा कि देख, ये शरीर में रहा है वह आत्मा। रहा भी कहाँ है? शरीर में आत्मा नहीं है, आत्मा में आत्मा है। शरीर में रहा हुआ आत्मा, लो ऐसा बताये। वह व्यवहार से समझाया है। मिट्टी मिट्टी में है और आत्मा आत्मा में है, दोनों का क्षेत्र अन्दर बिलकुल भिन्न-भिन्न है।

'**वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है।**' उससे--शरीर से भगवान को भिन्न जानना। वह तो समझाने के लिये बात थी। '**जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा,...**' वाणी सचेत, शरीर सचेत, मन सचेत ऐसा कहने में आये। वह तो निमित्त से समझाया है, उसे जीव नहीं मानना। वाणी जीव नहीं है, जड़ है, शरीर जीव नहीं है, जड़ है, मन द्रव्यमन वह जीव नहीं है, वह जड़ है। समझ में आया? '**जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा,...**' लो, उपचार से, यह उपचार आया--आरोप। '**सो कथनमात्र ही है, परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं...**' निश्चय से शरीर, वाणी, मन को जीव-फिव है नहीं। जीव तो ज्ञानानंद मूर्ति अन्दर वाणी, मन और देह से भिन्न है। उसकी पहिचान करने को व्यवहार से बात कही थी। लेकिन उस व्यवहार को आदरणीय मान ले, पहिचान करायी इसलिये, तो बड़ी भूल में पड़ा है। निश्चय जैसे सत्य है, वैसे व्यवहार भी समझाता है इसलिये सत्य है ऐसा नहीं है। '**ऐसा ही श्रद्धान करना।**' देखा! शरीर, वाणी, मन वह जीव नहीं है। समजाया भले व्यवहार से किन्तु जीव है नहीं।

'**तथा अभेद आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि भेद किये, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,...**' ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा। वहाँ कहाँ टूकड़े हैं अन्दर। यह सुखड़ की लकड़ी है देखो। सुगंध सो सुखड़, रंग सो सुखड़, वज़न सो सुखड़। वहाँ कहाँ तीन टूकड़े भिन्न-भिन्न पड़ते हैं। लेकिन यह समझा नहीं उसे उसके भेद द्वारा समझाने में आये। ऐसे आत्मा अखंड गुल्ली है अन्दर। अभेद एकरूप गुल्ली है। वह न समझे उसे, ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा ऐसा समझाया, किन्तु वह भेद तो कथन मात्र है। समझ में आया? आत्मा को भेदरूप

ही न मान लेना। आहाहा..! ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, ऐसा नहीं मान लेना। वह तो अभेद एक वस्तु है ऐसा कहते हैं। भेद तो समझाने के लिये हैं।

इसमें हज़ारों बोल डाले हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक, अभी तो देखो न, दो-दो रूपये में देने में आता है। है आप के हाथ में? दो रूपये में देने में आता है। देखो! चार रूपये की क़िमत का दो रूपये में देने में आता है। प्रचार के लिये। पहले दूसरे का था, अभी नवनीतभाई की ओर से तीन हज़ार छपवाये हैं। यह पुस्तक हिन्दी में आयेगा, हिन्दी में छपनेवाला है। वह हिन्दी दूसरा। उसका अर्थ ऐसा ही होनेवाला है। अन्य जगह दस रूपय में भी मिले नहीं। चार रूपये की लागत है और उसे दो रूपये में देने में आता है। एक रूपये का तो बाईन्डींग है। क्या कहते हैं उसे? पुट्ठा आदि है। वस्त्र सहित पुट्ठा। कोई भी रीति से लोग पढ़े, विचारे।

अनादि काल की गड़बड़ी चल रही है। निश्चय-व्यवहार की कथनी क्या है, लोग भरमाये हैं। व्यवहार भी है न, व्यवहार भी है न। लेकिन क्या व्यवहार है? व्यवहार एक जानने लायक चीज जगत में है, आदरणीय है नहीं। ऐसा न जाने और निश्चय एवं व्यवहार दोनों आदरणीय माने तो वीतराग की आज्ञा का वैरी है। वीतराग की आज्ञा को वह जानता नहीं। फिर वह त्यागी हो, साधु हो, योगी हुआ हो, नग्न मुनि हुआ हो, इस प्रकार न समझे तो उसे तो श्रद्धाभ्रष्ट कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**अभेद आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि भेद किये, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,...**' एक आत्मा में गुण के भिन्न-भिन्न टूकड़े नहीं है। वस्तु एकरूप है, उसमें टूकड़े (नहीं है)। देखो, यह सुखड़ है, उसमें सुगंध यहाँ है, वज़न यहाँ है, भारीपन है वह यहाँ है, रस है वह यहाँ है, ऐसा है क्या? वह तो पूर्ण एकरूप वस्तु है। इस प्रकार भेद द्वारा उसे समझाने में आता है। भगवान आत्मा अरूपी ज्ञानघन अनंत गुण का पिण्ड है, उसे गुणभेद द्वारा बताया। लेकिन गुणभेद मानना नहीं। '**निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उसही को जीववस्तु मानना।**' लो, निश्चय से आत्मा अभेद है, उसको जीववस्तु मानना।

'**संज्ञा-संख्यादि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है;...**' संज्ञा नाम पड़ता है न? आत्मा नाम और ज्ञान नाम, नामभेद हुआ लेकिन वस्तु कहीं भिन्न-भिन्न नहीं है। गुण अनंत और आत्मा एक, ऐसा भेद हुआ। लेकिन वस्तु अनंत नहीं है, वस्तु तो एक ही है। '**भेद कहे सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से भिन्न-भिन्न हैं नहीं--ऐसा ही श्रद्धान करना।**' अब तीसरे बोल की बात करते हैं। व्रत, शील, संयम की तकरार है वह।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)